घनानन्द की काव्यभाषा

सर्वेश सिंह

अपने इतिहास में, घनानन्द की काव्यभाषा के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं- "इनकी-सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। विप्रलम्भ शृंगार ही अधिकतर इन्होंने लिखा है। ये वियोग शृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं।"

कहना न होगा की घनानन्द की कविता के बारे में शुक्ल जी ने ये बातें सिर्फ़ चलते-चलते ही लिख दी हैं। हालाँकि- 'विशुद्ध, सरस, शक्तिशालिनी, प्रौढ़ता और माधुर्य' ज़रूर ऐसे आधार हैं जिन पर काव्यभाषा को परखा जा सकता है। पर ऐसा शुक्ल जी ने अपने इतिहास में और अन्यत्र भी, विस्तार से कहीं किया नहीं है।

फिर भी, घनानन्द की कविता का असर शुक्ल जी के मन पर बहुत गहरा है। यह उनकी कविता की ही ताक़त थी की शुक्ल जी ने, शायद अनचाहे ही, उनके लिए ये उदात्त वाक्य लिखे- " 'प्रेम की पीर' ही को लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा ज़बाँदानी का ऐसा दावा रखनेवाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"

घनानन्द को लेकर शुक्ल जी के चेतन-अवचेतन में यह सम्मोहन और आत्म-विभाजन आश्चर्य का विषय नहीं। यह शायद उनके युगीन बोध की सीमा भी थी। बहुत ऐहिक कविता उस समय के आलोचकों में लज्जा जगाती थी। इसके शिकार कई कवि हुए, केवल घनानन्द ही नहीं। वैसे भी शुक्ल जी की आलोचना के लक्ष्य कुछ दूसरे थे। उनकी निगाहों में तुलसी बसते थे। एक हद तक वे धर्मभीरु आलोचक थे। लोकमंगल और लोकधर्म उनके सिद्धान्त थे। स्वर्ण कलश वे सह सकते थे, मांसल वक्ष नहीं, भले ही सहज नैसर्गिक प्रेम की महानतम कविताओं को समुन्दर में फेंकना पड़े।

घनानन्द को लेकर शुक्ल जी की ये मान्यताएँ वर्षों तक हिन्दी की आलोचनात्मक चेतना का संस्कार बनी रहीं। वे अब भी हैं। जबकि ध्यान से देखें तो घनानन्द की कविता का जो मूल्यांकन उन्होंने किया है वह व्यवस्थित नहीं है। उनकी भाषा को उन्होंने चलते-चलते निपटा दिया। ज़बाँदानी का ऐसा दावा रखनेवाले कवि के लिए उनके इतिहास में मात्र चन्द शब्द हैं। जबकि मुझे ऐसा लगता है कि यदि शुक्ल जी

Scanned with CamScanner

इस कविता का गम्भीर मूल्यांकन करते तो इतिहास की दिशा, आलोचना की प्रकृति और उसके स्वरूप का मिज़ाज कुछ और ही होता।

हालाँकि तथ्य यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि शुक्ल जी या उस समय के अन्य आलोचकों की यह सीमा औपनिवेशिक वैचारिक सम्मोहन की वजह से बन भी गयी थी। साम्राज्यवादी शक्ति हिन्दुस्तान के उस किसी भी विचार या भाव को सामने नहीं आने देना चाहती थी जिसमें हिन्दुस्तानियों के मन में जीवन के प्रति तीव्र मोह का संकेत हो। वे उन्हें अध्यात्म और धर्म की भूल-भुलैया में घुमाये रखना चाहते थे ताकि यह जाति विरोध में उठ न खड़ी हो। यह दरअसल, अवचेतन के स्तर पर चल रहा औपनिवेशिक दुश्चक्र था जिसके शिकार तत्कालीन बुद्धिजीवी और साहित्यकार बने। घनानन्द जैसे कवि इस धुँधलके में खो गये। उनका उचित मूल्यांकन तब नहीं हो पाया।

आश्चर्य है कि एक विशाल साहित्य के रचयिता को यूँ वर्षों तक उपेक्षित रखा गया। ज़रा उनकी भाव सम्पदा पर नज़र दौड़ायें। उनके इन ग्रन्थों का पता लगता है- सुजानसागर, विरहलीला, कोकसागर, रसकेलिवल्ली और कृपाकन्द। इसके अतिरिक्त इनके कवित्त सवैयों के फुटकल संग्रह डेढ़ सौ से लेकर सवा चार सौ कवित्तों तक मिलते हैं। कृष्णभक्ति-सम्बन्धी इनका एक बहुत बड़ा ग्रन्थ छत्रापुर के राजपुस्तकालय में है जिसमें प्रियाप्रसाद, ब्रजव्यवहार, वियोगवेली, कृपाकन्दनिबन्ध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुलविनोद, धामचमत्कार, कृष्णकौमुदी, नाममाधुरी, वृन्दावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, रसबसन्त इत्यादि अनेक विषय वर्णित हैं। इनकी 'विरहलीला' ब्रजभाषा में, पर फ़ारसी के छन्द में है। उचित ही उनके बारे में यह उक्ति प्रचलित है-

नेही महा, ब्रजभाषाप्रवीन और सुन्दरताहु के भेद को जानै।
योग वियोग की रीति में कोविद, भावना भेद स्वरूप को ठानै।
चाह के रंग में भीज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सान्ति न मानै।
भाषाप्रवीन, सुछन्द सदा रहै सो घन जू के कबित्त बखानै।

ख़ैर, यह सब देख ही शायद इधर घनानन्द की कविता के पुनः मूल्यांकन की ज़रूरतें बढ़ी हैं। उस बहाने रीतिकाल को भी नये नज़रिये से देखने का प्रयास हो रहा है। हालाँकि ये कोशिशें नयी नहीं हैं। किन्तु पहले की दृष्टियों में नवीनता नहीं है। शुक्ल जी के इतिहास ने जो दायरा बना दिया था उसे लाँघने का साहस लोग पहले कर नहीं पाये। इसलिए यह पुनर्मूल्यांकन ज़रूरी भी है क्योंकि यह आलोचना की प्रकृति, साहित्य के स्वरूप और इतिहास की दिशा से भी जुड़ा हुआ है।

विशेषकर, स्वातन्त्र्योत्तर आलोचना में घनानन्द को लेकर राग बढ़ा। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, लल्लन राय और रामदेव शुक्ल के अध्ययन इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। उसका कारण कविता और साहित्य के प्रति नयी दृष्टि से था। पूर्व में शुक्ल जी आदि ऐहिक कविता को परखने का दावा भर करते थे पर विश्लेषण का उनका शिल्प पुरातन ही था। धर्म और कर्मकाण्ड से प्रभावित उनकी आँखों में कविता का खुलापन खटकता था। जबकि नयी दृष्टि ऐहिक कविताओं को उनकी पूरी मांसलता के साथ

Scanned with CamScanner

परखने में तत्पर हुई। इस प्रसंग में आलोचक नन्दकिशोर का अद्यतन अध्ययन विशेष उल्लेखनीय है। अपनी पुस्तक 'रीतिकाव्य' में उन्होंने समूची रीतिकविता को फिर से परखने की कोशिश की है। घनानन्द का मूल्यांकन भी उन्होंने सार्थक कसौटियों पर करने का प्रयत्न किया है। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने घनानन्द पर एक पूरा अध्याय लिखा है। बेहद सर्जनात्मक भाषा में वे लिखते हैं-

"घनानन्द को केवल प्रेम की पीर का कवि या प्रेम के पपीहे या ब्रजभाषा प्रवीण कहना अपर्याप्त है। ज़रूरत है इस बात की कि कविता में उनकी निजस्वता पर उँगली रखी जाय और यथासम्भव उसका कारण बतलाया जाय।"

नवल जी ने इस पूरे अध्याय में घनानन्द की कविता का वास्तविक अर्थ निकालने की कोशिश की है। यह कोशिश स्तुत्य भी है। पर मुझे लगता है कि उनके विवेचन में पहले से बनी धारणाओं का उपयोग ज़्यादा है जबकि घनानन्द की कविताओं और उनकी भाषा से निकलकर आनेवाले भाव और मुहावरे अछूते रह गये हैं। इसीलिए, प्रस्तुत आलेख में घनानन्द की काव्यभाषा के संक्षिप्त निदर्शन की एक कोशिश की गयी है। शायद इससे उनकी कविता की शक्ति और उसकी प्रासंगिकता थोड़ा और उभरकर सामने आये।

वास्तव में घनानन्द की काव्य प्रतिभा अर्जित है, प्राप्त नहीं। यह बात उन्हें उनके समकालीन कवियों से नितान्त भिन्न बनाती है। ऐसा नहीं कि औपचारिक काव्यकला की उन्हें शिक्षा नहीं प्राप्त थी बल्कि सच यह था की कविता की दुनिया में जब वे आये तो ज्ञान त्यागकर आये। कहें कि वे ज्ञानमार्ग से नहीं आये अपितु प्रेममार्ग से आये। यही दरअसल वह अवतरण है जो एक कवि को आधिकारिक और प्रामाणिक बनाता है। उनकी यह प्रसिद्ध पंक्ति ज़रा पढ़ें- 'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत।' यह पंक्ति उनके समय लिखी जा रही कविता पर एक तीखी टिप्पणी है। बल्कि यह किसी भी समय में, किसी शास्त्र के अनुकरण पर लिखी जा रही कविता पर एक वज़नदार आरोप है। यही हिम्मत उनसे लगभग दो सौ सालों बाद हिन्दी में आये कवि निराला ने फिर दिखायी और लिखा- 'मैंने मैं शैली अपनायी।' यह द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता पर एक तीखी टिप्पणी थी। बड़े कवियों को इतिहास शायद ऐसे ही मिलाता है।

इसलिए, शुक्ल जी, शायद अनायास ही पर सही जगह, उँगली रख रहे थे कि घनानन्द की कविता सर्वप्रथम एक ताक़तवर और आधिकारिक पद्य के साथ-साथ एक विश्वसनीय भाषा है। आप इस पद्य और भाषा को उपेक्षित नहीं कर सकते। यहाँ तक कि उसकी ध्वनियों तक में आपको अर्थों की विकट गूँज सुनायी देगी, अनुभव का एक घना रचाव नज़र आयेगा। भाषा की ताक़त, दरअसल उसके छन्दों या उदात्त वाक्यों में ही मात्र नहीं होती बल्कि वह इसमें होती है कि जीवन का अर्थ-घनत्व उसमें कितना है, और यह अर्थ जीवन के वास्तविक अनुभव से कितना एकमेक है। यही वह ताक़त और आधिकारिकता है जिसके बल पर घनानन्द यह लिख सके- "रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागै, ज्यौं ज्यौं, निहारियै।" प्रेमभाव के इस सातत्य

Scanned with CamScanner

का वर्णन साहित्य में बहुत नहीं मिलते। बहुत पहले विद्यापति ने लगभग इसी भाव का एक छन्द लिखा—'जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।'

उधर, एक अर्थ में कभी शुक्ल जी ने यह भी बिलकुल सही ही कहा था कि घनानन्द ब्रज के वैभव के कवि थे। एक तरफ़ सूरदास ने जहाँ ब्रज को भक्ति और किंचित् प्रेम में सानकर उसे बड़ा किया तो वहीं घनानन्द ने प्रेम की सृजनात्मक शक्ति भर उसे आधिकारिक और परिपक्व भाषा बना दिया। ब्रजभाषा को जैसे उन्हीं जैसे कवि की ही प्रतीक्षा थी।

भाषा की यह शक्ति, आधिकारिता और विश्वसनीयता ही उनकी कविता को उस मंज़िल पर लाकर खड़ा कर देती है जिसे प्रामाणिक कविता कहते हैं। यह कविता अधूरी नहीं होती। भाव-भंग नहीं होती। विचार-भ्रष्ट नहीं होती। अनुकरण-धर्मी नहीं होती। इसके अर्थ का प्रकाश अद्वितीय होता है। इसके अनुभव अपरिचित होते हैं, क्योंकि ये कवि के जीवन से गहरे जुड़े होने के प्रतिफल होते हैं। पर कविता का अर्थ और जीवन का वह अनुभव एक-दूसरे से अपरिचित नहीं होते। वे परस्पर पूरक होते हैं। उनका प्रभाव समग्र होता है। यही दरअसल, अर्थ और अनुभव का अद्वैत है जिसे हर बड़ी कविता की भाषा अर्जित करना चाहती है। सच कहें, तो रीतिकाल के पूरे परिवेश में घनानन्द के जैसे बहुत कम ही कवि हैं जिनकी भाषा में अर्थ और अनुभव का ऐसा अद्वैत मिलता है।

अर्थ और अनुभव की ऐसी एकरूप भाषा से घनानन्द की पूरी कविता भरी पड़ी है। किन्तु उसका एक ही उदाहरण काफ़ी है, और वह उदाहरण अत्यन्त त्रासद है। शायद यह झूठ हो, गढ़ी गयी बात हो, पर कथाओं पर विश्वास भी तो जमता है। कथा यह है कि संवत् 1796 में जब नादिरशाह की सेना के सिपाही मथुरा तक आ पहुँचे तब कुछ लोगों ने उनसे कह दिया कि वृन्दावन में बादशाह का मीर मुन्शी रहता है, उसके पास बहुत-कुछ माल होगा। सिपाहियों ने इन्हें आ घेरा और 'जर जर जर' चिल्लाने लगे। घनानन्द ने इसे उलटकर 'रज रज रज' कह तीन मुट्ठी धूल उन पर फेंक दी। उनके पास सिवा इसके और था ही क्या? सैनिकों ने क्रोध में आकर इनका हाथ काट डाला। इसके बाद कहते हैं कि मरते समय इन्होंने यह कवित्त पंक्तियाँ अपने रक्त से लिखीं-

बहुत दिनान की अवधि आस-पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को।
कहि-कहि आवन सँदेस मनभावन को,
गहि-गहि राखति ही दै-दै सनमान को
झूठी बतियानि को पत्यानि तें उदास ह्वै के,
अब न घिरत घनआनंद निदान को।
अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान को।

Scanned with CamScanner

मृत्यु के समय प्रेम की तितीक्षा का ऐसा रूपक, अनुभव को उकेरती भाषा के साथ, मुझे और कहीं खोजने में नहीं मिला, और भाषा में अर्थ और अनुभव की ज़रा एकतानता भी देखिये। अद्‌भुत है-

'अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान'।

मृत्युबोध को भी भेदती और चुनौती देती एक ज़बरदस्त भाषा, जिसका सानी, आसानी से नहीं मिलता।

वस्तुतः, प्रेम ही वह भूमि है जिसके घनानन्द चितेरे हैं। उनका मन यहीं रमता है। शुक्ल जी ने माना है कि वे प्रेम के वियोग पक्ष के कवि हैं। यह सच भी है। किन्तु इस वियोग की उदात्तता की जड़ें संयोग में छिपी हुई हैं। संयोग के इस पक्ष में उनकी भाषा जीवन के राग और मोह का अद्‌भुत चित्र उपस्थित करती है। सुजान हित का पहला ही छन्द देखें-

रूपनिधान सुजान सखी जब तें इन नैननि नेकु निहारे।
दिठी थकी अनुराग छकी मति लाज के साज समाज विसारे।
एक अचंभौ भयो घनआनंद हैं नित ही पल पाट उघारे।
टारे टरे नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन मोह के तारे।।

ज़ाहिर है कि ऐसा तीव्र राग ही बाद में सान्द्र वियोग में तब्दील हो जाता है। किन्तु वियोग की प्रभुता को ठीक से समझने के लिए यह भी समझ लें कि घनानन्द का यह संयोग व्यभिचारी प्रकृति का नहीं है। समय और समाज उसमें उपस्थित है। उनका प्रेम ऐकान्तिक नहीं है वरन् अन्तर-क्रियात्मक है। सुजान के प्रति प्रेम भावना समाज और संसार को भी सुन्दर बनाती है। आश्चर्य है कि उनकी भाषा यहाँ भी वही रागात्मक तेवर अपनाये रखती है। वृन्दावन भूमि के प्रति उनके प्रेम की भाषा की यह बानगी देखें—

गुरनि बतायो, राधा मोहन हू गायो सदा,
सुखद सुहायो वृन्दावन गाढ़े गहि रे।
अद्‌भुत अभूत महिमण्डन, परे तें परे,
जीवन को लाहु हा हा क्यों न ताहि लहि रे
आनन्द को घन छायो रहत निरन्तर ही,
सरस सुदेस सो, पपीहापन बहि रे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे।

संयोग में बेतरह लिप्तता, ज़ाहिर है, नश्वर जीवन में वियोग के अतल गहराई में ले जायगी। किन्तु घनानन्द की कविता वियोग के इस सागर में भी निराशा के गह्वर में नहीं है। उसकी भाव उच्चता देख मनोविज्ञान के आधुनिक सिद्धान्तों पर से भी विश्वास उठ सकता है। वैसे यह मौज़ूँ भी है। कवियों की इसी अन्तर्दृष्टि की ओर लक्ष्य करके एक प्रसिद्ध मनस्तत्त्ववेत्ता ने कभी कहा है कि भावों या मनोविकारों के स्वरूप परिचय के लिए कवियों की वाणी का अनुशीलन जितना उपयोगी है उतना मनोविज्ञानियों के निरूपण का नहीं।

Scanned with CamScanner

घनानन्द का वियोग वर्णन अद्वितीय है। उन्होंने न तो बिहारी की तरह विरहताप को बाहरी माप से मापा है, न बाहरी उछल-कूद दिखायी है, जो कुछ हलचल है वह भीतर की है, बाहर से यह वियोग प्रशान्त और गम्भीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह तपना है, न उछल-उछलकर भागना है। उनकी 'मौनमधि पुकार है।'

वियोग की इसी सेज पर उनकी भाषा का औदात्त देखते ही बनता है। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गयी थी कि ये उसे अपनी अनूठी भावभंगी के साथ-साथ जिस रूप में चाहते थे उस रूप में मोड़ देते थे। उनके हृदय का योग पाकर भाषा की नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखायी पड़ी। जब आवश्यकता होती थी तब ये उसे बँधी प्रणाली पर से हटाकर अपनी नयी प्रणाली पर ले जाते थे। भाषा की पूर्व अर्जित शक्ति से ही काम न चलाकर इन्होंने उसे अपनी ओर से नयी शक्ति प्रदान की है। घनानन्द जी उन विरले कवियों में हैं जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रूप-रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करनेवाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी। लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया। एक घनानन्द ही ऐसे कवि हुए जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगायी। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोगवैचित्र्य की जो छटा इनमें दिखायी पड़ी, वह अभी तक अप्राप्त ही है।

दरअसल, भाषा का लाक्षणिक प्रयोग घनानन्द के अभिव्यंजना शिल्प का प्रमुख गुण है। कवि ने इसके बल पर अपनी अभिव्यक्ति की क्षमता बढ़ा ली है। इसमें वक्रता और असाधारणता का चमत्कार भर दिया है। साथ ही बिम्बयोजना के काव्य-सौन्दर्य की योजना भी कर ली है। लक्षणा, शब्द के प्रसिद्ध अर्थ में दूसरे अर्थ के आरोप से बनती है। उससे प्रसिद्ध अर्थ (वाच्यार्थ) के अतिरिक्त आरोपित अर्थ भी प्रतीत होने लगता है। 'रस निचुरत मीठी मृदु मुसकान में', 'अंग-अंग तरंग उठै दुति की' प्रयोगों में नायिका की मुसकान ऐसी मोहक है जैसे किसी रसीली वस्तु में से रस टपकता हो और 'नायिका के अंगों में यौवन का सौन्दर्य जल की तरंगों के समान लहरा रहा है आदि आरोपित अर्थ प्रतीत होते हैं। दोनों प्रयोगों में 'रस निचुरत', 'तरंग उठै' क्रियापदों द्वारा आरोप किया गया है। दोनों स्थलों पर बिम्ब भी बनता है और व्यंग्यार्थ की प्रतीति से भाव के प्रेरण की क्रिया उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार लक्षणा के द्वारा कवि ने अभिव्यंजना का क्षितिज बहुत विस्तृत कर लिया।

घनानन्द की अभिव्यक्ति में पद-पद पर लक्षणा का प्रयोग हुआ है। मुहावरों की प्रचुरता भी लक्षणा के प्रसंग में ही प्रयुक्त है। मुहावरे रूढ़ा लक्षणा का रूप ही हैं। कवि की अभिव्यक्ति में विरोध का चमत्कार लक्षणा और मुहावरों के प्रयोग से ही आया है।

Scanned with CamScanner

लक्षणा में वाच्यार्थ पर लक्ष्यार्थ का आरोप होता है। इस स्थिति में कहीं वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ के साथ-साथ प्रतीति का विषय बनता और कहीं उसका त्याग हो जाता है। इसी को जहत्स्वार्था और अजहत्स्वार्था कहा जाता है। स्वार्थ.अर्थात् वाच्यार्थ का जहत् अर्थात् त्याग अजहत् अर्थात् त्याग का न होना, यानी प्रतीत होना। घनानन्द के लाक्षणिक प्रयोगों में लक्ष्यार्थ के साथ-साथ वाच्यार्थ की प्रतीति को लेकर विरोध प्रतीत होता है-

क. जतन बुझे हैं सब जाकी झर आगें

ख. जीव सूक्यौ जाय त्यौं ज्यौं भीजत सरवरी

ग. उघरौ जग छाय रहे घनआनंद चातक लौं तकियै अब तौ।

घ. यौं उघरे घनआनंद छाय कैं हाय परी पहचानि पुरानी

ड. अचिरघ खानि उघरे हू लाज सौं ढके।

इन प्रयोगों में लक्षणा और उसके बल पर विरोध का चमत्कार व्यंग्य हुआ है। जतन बुझना अर्थात् यत्नों का निष्फल होना, जीव का सूकना अर्थात् पीड़ित होना, सरवरी का भीजना अर्थात् रात का ढलना, उघरौ जग अर्थात् संसार का हट जाना, छाय रहे घनआनंद अर्थात् आनन्द के बादल (परम सत्ता या प्रिय) दृष्टि में बने रहना आदि में रूढ़ा लक्षणा अर्थात् मुहावरों का प्रयोग है।

लक्षणा के प्रयोग से वास्तव में बिम्बविधान बड़ी सफलता के साथ होता है। आरोपित वस्तु अर्थात् अप्रस्तुत वस्तु प्रस्तुत का चित्र खड़ा कर देती है। लक्षणा का काव्य में दुहरा लाभ होता है- बिम्बविधान और चमत्कार की व्यंजना। घनानन्द ने दोनों लाभ उठाये हैं। सबल लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा संश्लिष्ट चित्र की योजना नीचे लिखे सवैया में देखने योग्य है-

झलकै अति सुन्दर आनन गौर छके दृग राजत कानन छ्वै।
हँसि बोलनि में छवि फूलन की बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करें, कल कण्ठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग-अंग तरंग उठे दुति की परि है मनौ रूप अबै धर च्वै।।

पद में 'झलकै', 'छके दृग', 'छवि फूलन की बरसा', 'लट लोल कपोल कलोल करें', 'तरंग उठे दुति की', 'परि है मनौ रूप अबै धर च्वै' लाक्षणिक प्रयोग हैं।

इसी तरह अभिधा मूला व्यंजना के ये उदाहरण देखें-

क. जो दुखदेखति हौं घनआनंद रैनि दिना बिन जान सुतंवर।
जानें वेई दिनराति बखानै लैं जाय परै दिन रात को अन्तर।

ख. इत बाँट परी सुधि रावरे भूलनि, कैसें उराहनौ दीजियै जू।।

ग. जौ कीहूँ जान लखैं घनआनंद तौ तन नेकुन औसर पावत।
कौंन वियोग भरे अँसुवा जो संजोग में आगेड़ धावत।।

घ. यौं घनआनंद रैनि दिना नहिं बीतत, जानियै कैसे बिताऊँ।

Scanned with CamScanner

काव्यभाषा की यह बहुस्तरीयता घनानन्द की कविता में भरी पड़ी है तथा उस पर गहन शोध की ज़रूरत है। सच कहें तो वियोग के उनके कवित्त हिन्दी की शब्द-सम्पदा में अर्थ का जो प्राण फूँकते हैं वही बाद की प्रेम कविता की थाती बनती है।

वस्तुतः कोई भी भाषा सर्वप्रथम समाज में पड़ी एक आम भाषा ही होती है। कविता वह तभी बनती है जब उसमें कवि के व्यक्तित्व की आँच और जीवन के अनुभवों का ताप मौज़ूद हो। घनानन्द इस दृष्टि से, जैसा कि मैंने पहले ही कहा, एक आधिकारिक कवि हैं। बाह्य प्रभाव उनमें ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेंगे। जो है सब उनका है। इसीलिए आत्माभिव्यक्ति उनके कहने का जादू है। वह अपने सुख-दुःख, विचार, अनुभूति आदि को अपना व्यक्तिगत बनाकर ही व्यक्त करते हैं। उनके कवित्त प्रायः उत्तम पुरुष की भाषा में ही व्यक्त हैं-

इतबाँट परी सुधि, रावरे भूलनि, कैसे उलाहनौ दीजियै जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई, जु कछू मनभाई सुकीजियै जू।
घनआनंद जीवन प्रान सुजान, तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ, तुम्हें चाड़ कहा, पै असीस हमारियौ जीजियै जू।

(प्रिय, हमारे बाँट अर्थात् हिस्से में याद करते रहना आया है और आपके हिस्से में भूल जाना। ऐसे में आपको उलाहना भी कैसे दें। अब तो भाग्य ने जो दिया है वह मैंने सिर चढ़ाकर आदरपूर्वक स्वीकार कर लिया है। अब आपको जो अच्छा लगे वह करो। घनानन्द सुजान, मेरे तुम प्राणों के भी प्राण हो। मैं तुम्हारी बातों के सहारे ही जीवित हूँ। तुम्हें तो किसी बात की चाहना नहीं है। फिर भी हमारी यह आशीष स्वीकार करो कि आप सदा प्रसन्न बने रहें।)

प्रेम का, चाहे वह संयोग में हो या वियोग मे, सम्भवतः यही लक्ष्य है। इसे व्यक्त करने में घनानन्द की भाषा, भावों से कहीं भी पीछे नहीं है। भाषा ब्रज की है पर इसने कितने हिन्दी कवियों को शब्द और उसके प्रयोग के शिल्प दिये हैं, इसकी शिनाख़्त अब ज़रूरी है।

Scanned with CamScanner